इंद्रियां हमें तरह-तरह के एहसास कराती हैं और इनसे हमारा नज़रिया ज़ाहिर होता है। नज़रिये से हमारे भीतर भ्रम पैदा होता है। माया हमें भ्रम के घेरे में घुमाती रहती है। ये घुमाव हमारी अंधरूनी प्रगति को एक सीमा में बांध देता है। इस सीमा को तोड़कर बाहर निकलने के लिए हमें अपनी इंद्रियों से पार जाने की ज़रूरत है। यानी इंद्रियों को नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है।

गुरुदेव : इंद्रियों से परे

छोले-भटूरे का आनंद उठाने वाले एक नौजवान ने अपने घर की अलमारी में बंद पिन्नी को चुराने के लिए अपनी उभरती आध्यात्मिक शक्ति और हुनर का इस्तेमाल किया था। यही लड़का आगे चलकर आध्यात्मिक गुरू बन गया, जिसने किसी उपद्रव के बिना जो भी परोसा गया वो खाया और कभी बासी खाना खाने से भी परहेज़ नहीं किया।

उनके आध्यात्मिक मन ने अपने गुणों-आदतों को सुधारने और उनसे आगे बढ़ने की ज़रूरत को पहचाना। मेहनत और आत्मपरीक्षण करने के बाद उन्होंने उन इच्छाओं पर क़ाबू पा लिया, जिनके कारण अधिकतर लोग परेशान रहते हैं।

एक सामान्य नियम है - हमारी ज्ञान-इंद्रियां विभिन्न तत्वों से सम्बंधित होती हैं। ये तत्त्व विभिन्न नाड़ियों यानि के ऊर्जा चैनलों के माध्यम से हमारे शरीर के अलग-अलग चक्रों से सम्बंदित हैं। इसलिए, हमारी इंद्रियां हमें चेतना के निचले स्तरों पर अटकाए रखती हैं।

शास्त्रों के अनुसार, पृथ्वी तत्व से संबंधित गंध का अनुभव रीढ़ के आधार पर स्थित मूलाधार चक्र से जुड़ा होता है। स्वाद का अनुभव जल तत्व से संबंधित है और स्वाधिष्ठान चक्र से जुड़ा है। दृष्टि अग्नि तत्व से संबंधित है और मणिपुर चक्र से जुड़ी है। इसी प्रकार स्पर्श का संबंध वायु तत्व और अनाहत चक्र से है। ध्वनि ईथर से संबंधित है और विशुद्धि चक्र से जुड़ी है जो गले के स्तर पर स्थित है।

योग-विज्ञान प्रत्याहार यानी इंद्रियों से मन का ध्यान हटाने के अभ्यास की वक़ालत करता है। गुरु वशिष्ठ के अनुसार इंद्रियां मोह-माया का कारण होती है। ये दिखावे की भ्रामक दुनिया में हमें उलझाती हैं। हालांकि अपनी इंद्रियों पर असामान्य नियंत्रण प्राप्त करके उन्नत अध्यात्मवादी बाक़ी लोगों से अलग हो जाते हैं। गुरुदेव ने न केवल इस मार्ग पर चलने की बात कही, बल्कि वह ख़ुद भी इस रास्ते पर चले। इसलिए उनकी जीवनी न केवल उनके जीवन की कहानी है, बल्कि उनका संदेश भी है।

आइए सुनते हैं पूरन जी को।

सवालः उन्हें किस तरह का खाना पसंद था?

पूरन जीः वह बिना किसी ना नुकर के शाकाहारी भोजन में कुछ भी और सब कुछ खा लेते थे। बहुत ही सादा खाना। उन्होंने कभी नहीं कहा, "मुझे भूख लग रही है"।

सवालः कभी नहीं कहा?

पूरन जीः चाहे दोपहर के खाने का समय हो, या रात के खाने का-उन्होंने कभी नहीं पूछा कि खाना तैयार है या नहीं। कभी नहीं।

हमने गुरुदेव के स्वाद को लेकर उनकी पसंद-नापसंद के बारे में बिट्टू जी से बात की। बिट्टू जी उनकी खानपान संबंधी ज़रूरतों का ध्यान रखते थे।

बिट्टू जीः भोजन को लेकर गुरूजी की कोई विशेष पसंद नहीं थी। जो भी खाना बनता था, वह खा लेते थे। कई बार ताज़ा खाना होने के बावजूद वह किचन में जाते थे और एक दिन पहले का बचा हुआ खाना नमक और मिर्च डालकर खाते थे। उन्होंने कभी किसी खास व्यंजन की मांग नहीं की। वह बहुत सरल इंसान थे।

गुरुदेव के भतीजे, गग्गू, बहुत अच्छे इंसान हैं। गुरुदेव उनसे बहुत प्यार करते थे, भतीजे के रूप में नहीं, बल्कि इसलिए भी कि वह बहुत दयालु थे और अब भी हैं। दुर्भाग्य से, वह अभी तक जुबान की जंग नहीं जीत पाये हैं। तो, चलिए सुनते हैं गग्गू जी को!

गग्गू जी: उन्हें आम और खरबूजा बहुत पसंद था। हम उन्हें आम काटकर देते थे। मैंने यह भी देखा कि उन्हें खट्टा टुकड़ा ही क्यों न मिल जाए, वह चुपचाप खा लेते थे। कभी नहीं कहा कि यह टुकड़ा खट्टा था। वह तो हमें बाद में पता चलता था कि उन्हें खट्टा टुकड़ा परोस दिया गया था।

द्वारकानाथ जी गुरुदेव के मकान-मालिक थे जो नागपालजी और गुरुदेव के साथ 120 वर्ग फुट के कमरे में रहते थे। वह कुछ इस तरह गुरुदेव को याद करते हैं।

सवालः क्या गुरुदेव भोजन के शौकीन थे?
द्वारकानाथ जीः खाने को लेकर उनकी कोई खास पसंद नहीं थी। उन्होंने कभी नहीं कहा कि ये चाहिए या वो चाहिए। शाम को जब खाना नहीं बनाना होता था तो एक व्यक्ति की ड्यूटी होटल से रोटी और दाल लाने की होती थी। एक की ड्यूटी चूल्हा जलाने की होती थी। उसे चूल्हा जलाकर दाल के लिए घी का तड़का बनाना होता था, वह काम मुझे मिलता था। एक से दही मंगवाया जाता था। आधा किलो या फिर बर्तन में जितना आ जाए, उतना। गुरुजी जब भी बाहर जाते तो रोटी खरीदते, दाल खरीदते और दही के बर्तन में उसे मिलाकर खाते थे।

भोजन के स्वाद या फल के खट्टेपन की शिकायत न करना तभी संभव हो सकता है जब स्वाद की अनुभूति को जीत लिया जाए। गुरुदेव के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए मैं कृतज्ञता महसूस करता हूं कि गुरुदेव शेफ़ नहीं बने क्योंकि अगर वे शेफ़ होते, तो अब तक का सबसे ख़राब रेस्टोरेंट चला रहे होते! लेकिन चलिए इस बात को आपस में ही रखें क्योंकि कई लोग इसे पचा नहीं पाएंगे! मज़ाक के लिए माफ़ करें!

उनकी सबसे छोटी बेटी अलका भोजन के संबंध में एक विशेष बात की चर्चा कर रही हैं।

सवालः क्या गुरुदेव को किसी ख़ास तरह के खाने का शौक़ था या किसी भी तरह का खाना वह मज़े लेकर खा लेते थे?

अलका जीः गुरुजी प्यार से बनाया गया खाना पसंद करते थे। वह हमेशा माताजी से कहते थे, "आप जो चाहें बना लें, भले ही आप केवल रोटी ही बनाएं, पर प्यार से बनाएं।"

गुरुदेव का मानना था कि जिस भोजन से शरीर को लाभ न हो, उसे खाने का मोह नहीं रखना चाहिए। वह नहीं चाहते थे कि हम दूसरों का भोजन खाकर उनके प्रति बाध्य हों। भोजन हम सबके लिए आवश्यक तो है ही, साथ ही यह हमें ऊर्जा भी देता है। मुझे एक सदियों पुरानी कहावत याद है, *"जैसा अन्न वैसा मन, जैसा पानी वैसी वाणी"।*

प्राचीन भारतीय दर्शन के अनुसार, एक ही भोजन को जब अलग-अलग लोग पकाते हैं तो भोजन का सेवन करने वालों के दिमाग़ पर परिणाम भी अलग-अलग हो सकते हैं।

खाना पकाने वाले की नज़र का असर भोजन में पड़ता है। उसके गुण और मनोदशाएं भोजन को प्रभावित करती हैं। मेरे माता-पिता ने खाना बनाने के लिए सीताराम नाम के एक सहायक को रखा था। जो दिन भर अपशब्दों का प्रयोग करता रहता था। मैंने देखा कि जब मैंने उसका पकाया भोजन खाना शुरू किया तो मैं भी अपशब्दों का प्रयोग करने लगा! इसी तरह, जब आप गुस्से में खाना खाते हैं, तो इससे आपके भोजन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसी कारण मंदिरों में प्रसाद बनाने के लिए रसोइयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाता है। गुड़गांव में मैंने कई साल बिताए। जब माताजी कोई विशेष व्यंजन बनाती थीं, तो मैं बड़ी आसानी से जान जाता था कि यह उन्होंने पकाया है। यह बात आश्चर्यजनक तो है, लेकिन सच है।

ऐसे और भी तरीक़े हैं जिनसे भोजन पर असर पड़ सकता है। विशेष रूप से सफ़ेद रंग का भोजन जहां पकाया जाता है या जहां उसे खुला छोड़ दिया जाता है तो वह वहां रहने वाली आत्माओं से प्रभावित हो सकता है। अक्सर खाने की वस्तुओं के माध्यम से किसी पर काला जादू किया जा सकता है।

गुरुदेव को मिलने से पहले मैं काले जादू का शिकार हो चुका था। जिस व्यक्ति ने मुझ पर काला जादू करके गठिया रोग दिया था, उसने सफ़ेद मिठाई का इस्तेमाल किया था। उसने विशेष

प्रकार के उल्टे मंत्रों और अनुष्ठानों का उपयोग करके उस मिठाई को संक्रमित किया था, जिससे वह नकारात्मक ऊर्जा का माध्यम बन गई। गुरुदेव के पुराने शिष्यों में से एक, वीर जी, ने इसे अपने ज्ञान से पहचाना और और इस बात को भी जाना की यह जादु कहाँ से किया गया था।

पानी का असर हमारी भावनाओं और अनुभूतियों पर हो सकता है। इसका उपयोग जहां तबीयत को ठीक करने के लिए किया जा सकता है, वहीं इससे लोगों को बीमार भी किया जा सकता है।

गुड़गांव में रहने वाली कमलेश को जान से मारने की नीयत से एक गिलास शर्बत में ताबीज़ घोलकर पिलाया गया था। गुरुदेव ने इस महिला की जान बचाई थी। सालों से मैं ऐसे सैकड़ों मामलों को देखता आ रहा हूं। यह घटना भी मेरे सामने ही हुई थी।

भोजन और पानी में शामिल ऊर्जा शरीर और मन दोनों को प्रभावित कर सकती है। हमारे पूर्वजों की इन सीखों की अब वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में पुष्टि की जा रही है।

गुप्ता जी गुरुदेव के एफ़.एंड.बी मैनेजर की तरह थे और उनकी ज़रूरतों का ध्यान रखते थे। गुप्ता जी की चाय की दुकान वह जगह थी जहां गुरुदेव कई ऐसे लोगों से मिलते थे जो या तो उनसे आशीर्वाद मांगने या उनकी मदद लेने आते थे। उनके अनुसार, महागुरु ज्यादातर चाय और ताज़ी हवा के भरोसे ही अपना दिन गुज़ारते थे।

सवालः क्या उन्हें कोई फल पसंद था?

गुप्ता जीः नहीं।

सवालः वह सुबह लगभग 7.30 बजे आते थे तो क्या नाश्ता नहीं करते थे?

गुप्ता जीः नहीं। अक्सर जब माताजी सो रही होती थीं गुरुदेव ऑफ़िस के लिए निकल जाते थे! काम पर निकलने से पहले वह घर पर सिर्फ एक गिलास नीबू पानी पीते थे।

सवालः नीबू पानी, बस?

गुप्ता जीः हां। माताजी को पता ही नहीं चलता था कि गुरुजी घर से कब निकल गए। निचोड़े हुआ नींबू का छिलका दिखाई देने के बाद उन्हें पता चलता था।

सवालः उन्हें तब पता चलता था?

गुप्ता जीः हां

सवालः खाने को लेकर उनका क्या विचार था?

गुप्ता जीः वह खाते ही कब थे!

गुप्ता जी की इस बात से मैं भी इत्तेफ़ाक़ रखता हूं कि गुरुदेव बहुत कम खाते थे। बहुत बार, हमें उनके सामने खाने में शर्म आती थी क्योंकि वह कुछ भी नहीं खाते थे। मुझे लगता है कि वह ऐसा जान-बूझकर करते थे। कभी-कभी मैं सोचता हूं कि क्या वह हमें इंद्रियों पर नियंत्रण करना सिखाने के लिए ऐसा करते थे।

गिरि लालवानी अपनी बात कहते हैं।

सवालः गुरुदेव को क्या खाना पसंद था?

गिरि जीः उन्हें खाने का शौक़ नहीं था। वह बहुत कम खाते थे। उनके खाने का तरीक़ा भी बहुत ही साधारण था। कई बार खेत में काम करते समय वो एक रोटी लेकर उस पर सब्जी रख कर ही खा लेते थे। उन्हें सादा खाना पसंद था।

अपनी आदतों को जीतना उनके लिए आसान काम नहीं था। वह अपने युवा दिनों में अच्छे भोजन के शौक़ीन थे। इस बारे में आप गग्गू, राजी शर्मा और अन्य लोगों से जानेंगे।

उन्होंने धीरे-धीरे, लेकिन लगातार कोशिश करके अपनी इंद्रियों की कमज़ोरियों को जीता। ऐसा नहीं था कि वह रोबोट बन गये और व्यंजनों का आनंद नहीं लिया। लेकिन आम तौर पर वह इंद्रियों को नियंत्रण में रखते थे। सत्तर-अस्सी के दशक में उनके भीतर तेज़ी से बदलाव हुआ।

राजी जी पुराने दिनों को याद करते हैं।

सवालः राजी, आप गुरुदेव को सत्तर के दशक के मध्य से जानते हैं, तो मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि उनके व्यक्तिगत विकास और उनकी आदतों में क्या अंतर आया था। जैसे कि उनके

स्वाद और स्पर्श को लेकर क्या बदलाव आया? क्या वह पहले भोजन के शौक़ीन थे, बाद में खाना कम कर दिया, या संगीत या और भी इसी तरह के शौक़ में कोई अंतर आपने देखा?

राजी जीः मुझे लगता है कि गुरुजी इन सब बातों में बहुत संतुलित थे। वास्तव में उनके लिए स्वाद मायने नहीं रखता था। उन्हें जो भी खाना परोसा जाता था वह उसमें संतुष्ट रहते थे, फिर वह पराठा हो, बिना मक्खन की डबलरोटी हो, यहां तक कि चाय के साथ मट्ठी ही क्यों न हो, वह प्रेम से खा लेते थे। उन्हें चाट-पकोड़ी जैसे चटपटे खाने का बहुत शौक़ था और गोल गप्पे भी पसंद थे। लेकिन ये चीज़ें हैं या नहीं हैं, इससे उन्हें बिल्कुल फ़र्क नहीं पड़ता था।

व्यंजन गुरुदेव के मेनू का ज़रूरी हिस्सा नहीं थे। उन्होंने अपने स्वाद की अनुभूति पर रोक लगाई थी। कठिन परिस्थितियों में भी वह बहुत थोड़े-से भोजन से भी अपना पेट भर सकते थे। खाना न भी मिले तो उन्हें कोई परवाह नहीं रहती थी। कई बार उनके शिष्यों ने इस बात का अनुभव किया है कि वह कई दिनों तक बिना भोजन के रह सकते थे। केवल कुछ कप चाय ही उनके लिए काफ़ी होती थी।

एक ऐसे व्यक्ति जो आध्यात्मिक होकर एक ही समय में दो जगहों पर रह सकते थे, उनके लिए बिना भोजन के रहना कौन-सी बड़ी बात थी!

उनकी बेटी रेणु इस बारे में कुछ बता रही हैं। साथ ही, इंदु दीदी नाम की एक बहुत ही नेकदिल इंसान से भी हमारा परिचय करवा रही हैं जिन्होंने बेटी से बढ़कर गुरुदेव की देखभाल की थी। वह गुड़गांव में रसोई का सारा कामकाज संभालती थीं।

रेणु जीः मैने इंदु दीदी के साथ जो अनुभव किया वह साझा कर सकती हूं। गुरुजी को खाने में कभी कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह हर चीज़ में ख़ुश रहते थे। वह तभी भोजन करते थे जब उन्हें वास्तव में भूख लगती थी। उनके खाने का कोई विशेष समय नहीं होता था। हालांकि वह चाय बहुत पीते थे। उन्हें सब कुछ पसंद था। कभी-कभी वह कुछ व्यंजन पकाते भी थे। दक्षिण भारतीय भोजन, गोल गप्पे, चने भटूरे उनको पसंद थे। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि घर पर उनके लिए कुछ ख़ास पकाया गया हो, और उन्होंने केवल वही खाया हो। मैंने ऐसा कभी नहीं देखा। वह उपमा, खट्टे दही के साथ आलू की सब्जी और पोहा बहुत अच्छा बनाते थे। वह घर

पर कभी-कभी ही खाना बनाते थे, लेकिन जब हम उनके साथ दौरे पर जाते और वह अच्छे मूड में होते और लोग भी कम होते तो वह हमारे लिए खाना बनाते थे। एक बार जब इंदु दीदी ने उनसे कहा, "पेट भरकर खा लीजिए क्योंकि आपने रात में ठीक से खाना नहीं खाया था।" तो, उन्होंने कहा, **"पुत्त जिनु खिलांच मज़ा आ गया न, खान दा मज़ा नई रेंदा।"**

जिन्होंने दूसरों को खिलाना सीख लिया, वे लोग शायद ही कभी खुद के खाने की परवाह करते हैं। क्या यह महत्त्वपूर्ण बात नहीं है?

गुरुदेव पोषण विशेषज्ञों के लिए आश्चर्य का विषय रहे होंगे। उनकी खानपान की आदतें ऐसी थीं जिसमें समय का बंधन नहीं था। कभी भी, कुछ भी खा लेते थे। और कभी-कभी तो नहीं भी खाते थे! इंद्रियों पर नियंत्रण हासिल कर लेने के कारण वह अपने बनाए हुए नियमों पर चलते थे।

उनके साथ रहना, उनकी देखभाल करना आसान काम नहीं था क्योंकि आपको मालूम ही नहीं होता था कि करना क्या है।

चार मसखरों ने निश्चित रूप से बड़ा मुश्किल काम निभाया था। उनमें से एक हैं - बिट्टू जी।

बिट्टू जीः गुरुजी हमेशा कहते थे कि अन्न ईश्वर के समान है। आपको इसका अनादर करने का कोई हक़ नहीं है। यह परमेश्वर है। मैं आपको एक घटना बताता हूं। मैं अक्सर देर रात को गुरूजी को खाना परोसता था। कई बार वह मुंह तक ग्रास ले जाते और कहते, "मुझे नहीं खाना। इसे वापस ले जाओ"। हम सब उनके खाने की प्रतीक्षा करते थे। उनके खा लेने के बाद ही हम यानी माताजी, मैं, गुरुजी का सेवक कृष्णा और उनका पालतू कुत्ता कालू भोजन करते थे। गुरुजी का कुत्ता भी बहुत वफ़ादार था, भले ही आप उसे पहले खाना दे दें, वह तब तक नहीं खाता था जब तक कि गुरुजी भोजन नहीं कर लेते थे। इसलिए जब एक बार गुरुजी ने भोजन का निवाला लेकर नीचे रख दिया और कहा, "मुझे नहीं खाना, इसे वापस ले जाओ।" तो माताजी नाराज़ हो गईं। मैंने भी गुरुजी से कहा, "गुरुजी, आपने ही हमसे कहा था कि हमें ईश्वर द्वारा दिए गए भोजन का अपमान नहीं करना चाहिए। लेकिन आज आप वही कर रहे हैं।" उन्होंने कहा, "क्या मतलब है तुम्हारा?" मैंने कहा “हमने आपके सामने खाना रखा है। आपने एक निवाला अपने मुंह

तक ले जाने के बाद कह दिया कि खाना वापस ले जाओ। यदि आप नहीं खाएंगे, तो माताजी भी नहीं खाएंगी।" यह सुनकर गुरुजी ने मुझे अपने पास बैठने को कहा। उन्होंने पूछा, "जब मैं भोजन कर रहा होता हूं तो मेरी आंखें बंद रहती हैं या खुली होती हैं?" मैंने जबाव दिया-बंद। उन्होंने कहा, "जब मैं अपने मुंह के पास निवाला ले जाता हूं और देखता हूं कि मेरे बच्चों ने कुछ भी नहीं खाया है, चाहे वह किसी भी स्थिति में हों, यात्रा कर रहे हों या अस्पताल में हों या और भी कोई कारण हो तो मैं खाना नहीं खा सकता। मेरे बच्चे भूखे होंगे तो मैं कैसे खा सकता हूं?"

यह उनका अपनी शक्ति के बल पर नियति और ग्रह-नक्षत्रों को चुनौती देने का तरीक़ा था। भोजन करना उनके भाग्य में था, लेकिन उन्होंने अपने उस हक़ को छोड़ दिया और ऐसा करके, भोजन को टालने या फिर किसी और को देने का अधिकार प्राप्त कर लिया। आसान शब्दों में कहें तो उन्होंने अपने हिस्से का भोजन त्यागकर उसे किसी और को देने का अधिकार पा लिया। ऐसा किसी और ने किया हो, मैंने सुना नहीं है।

इस दर्शन को जानना एक बात है, लेकिन इस पर अमल करना दूसरी बात है। मन पर पूरी तरह से क़ाबू पाकर लालच से दूर रहा जा सकता है। इससे अपने संकल्प पर टिके रहने में मदद मिल सकती है।

अपनी जवानी के दिनों में गुरुदेव फ़िल्मों के शौक़ीन थे। उन्होंने पुणे फ़िल्म और टेलीविज़न इंस्टीट्यूट में प्रवेश के लिए आवेदनपत्र भी दिया था, लेकिन सौभाग्य से उनका आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। भगवान का शुक्र है!

भाग्य अक्सर महान लोगों का साथ देता है। शक्तियां अजीबोगरीब तरीक़ों से उनकी मदद करती हैं। लेकिन ये मूवी टिकट का क्या मामला है?!

आइए, द्वारकानाथ जी से जानते हैं!

द्वारकानाथ जीः गुरुदेव को फ़िल्में देखना बहुत पसंद था। हम लोगों को भी अपने साथ चलने को कहते थे। वह रात 9 बजे शीला सिनेमा में नाइट शो देखा करते थे। नागपाल जी को 'नागा'

और मुझे 'द्वारकाधीश' कहते थे। वह कहते थे चलो तैयार हो जाओ और जब हम कहते कि देर हो गई है, टिकट नहीं मिलेगी, टिकट काउंटर बंद हो गया होगा। तो वह कहते थे, चलो, चलो हमें टिकटें ज़रूर मिलेंगी। जैसे ही हम सिनेमा हॉल में पहुंचते, ऐसा लगता था कि गुरुदेव ने कोई जादू कर दिया है। वहां पर हमें एक अनजान आदमी इंतज़ार करता हुआ मिल जाता था। वह हमसे पूछता कि क्या हमें टिकट चाहिए। उसे फ़िल्म नहीं देखनी है। हम हां कहकर उससे पूछते कि तुम्हारे पास कितनी टिकटें हैं, तो वह कहता कि तीन। तो हम तीनों इस तरह सिनेमा हॉल में पहुंच जाते थे।

बड़े जैन साहब भी फ़िल्म-टिकट का जुगाड़ करने में माहिर थे। वह गुरुदेव के शिष्य थे। एक बार वह अपनी पत्नी को फ़िल्म दिखाने ले गए। पता चला कि शो हाउसफ़ुल है। पत्नी पर रौब गांठने के लिए और उनपे अपने गुरू का भरोसा पक्का करने के लिए उन्होंने कहा कि चिंता न करो टिकट मिल जाएगी। थोड़ी ही देर बाद, जैसा कि उन्होंने कहा था, किसी ने जैन साहब को दो टिकटें पेश कर दीं। और इस तरह हाउसफ़ुल शो की दो टिकटें उन्हें मिल गई। दुर्भाग्य से, श्रीमती जैन को समझाने के लिए उन्हें थोड़ी और कोशिश करनी पड़ी।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, गुरुदेव के सभी शौक़ और रुचियां सेवा के सागर में समाते चले गए। सुबह जागने से लेकर रात को सोते तक वह सेवा ही करते थे। जब वह ऑफ़िस जाते तो यह उनके लिए एक कमर्शियल ब्रेक की तरह होता था।

गुरुदेव के लिए गंध इन्द्री का ज़्यादा महत्व नहीं था। मैंने कभी उनके पास इत्र नहीं देखा। वह उसका इस्तेमाल भी नहीं करते थे। उनका मानना था कि द्वंद्व को जीतने में सुगंध या दुर्गंध की बाधा नहीं होनी चाहिए। न तो सुंदरता से आकर्षित होना चाहिए, न ही बदसूरती से मुंह मोड़ना चाहिए।

उन्होंने हमें चेतावनी दी कि मृत्यु के बाद हम एक ऐसे चौराहे पर खड़े होंगे जहां एक तरफ़ सुंदरता होगी और दूसरी तरफ बहुत ही साधारण दृश्य। उन्होंने हमें कभी भी सौंदर्य के रास्ते को चुनने की सलाह नहीं दी, क्योंकि वह रास्ते हमे निचले स्तर पर ले जाते है, जबकि सरल और सामान्य रास्ते ऊंची जगह तक पहुंचाते हैं।

उन्होंने हमें यह भी अहसास कराया कि अगर हमारी आंखें विपरीत लिंग की ओर आकर्षित होती हैं, तो निचले दर्जे की बात होगी। चूंकि हमारी आंखें ऊर्जा ग्रहण करने और बाहर निकालने का माध्यम होती हैं इसलिए इस तरह के आकर्षण से हमारी ऊर्जा उस ओर निकल जाएगी और हमारी आभामंडल का नुक़सान होगा।

दृश्य के अहसास के बाद अब हम समझते हैं स्पर्श के अहसास को...

स्पर्श के अहसास में मौसम के प्रति संवेदनशीलता, कामुक सुख आदि शामिल होता है। मुझे याद है कि पहाड़ियों में भीषण सर्दियों में भी गुरुदेव केवल एक ही स्वेटर पहनते थे। मैं एक बार उनसे मिलने मध्यप्रदेश में बीना के पास मुंगावली के कैंप में गया था। जब मैं कैंप में पहुंचा, गुरुदेव काम से लौटे नहीं थे। मैं उनकी इंतज़ार में ठंड के मौसम का आनंद लेते हुए टहल रहा था। मैंने टी-शर्ट पेहेनी हुई थी। जैसे ही सुना कि वह आने वाले हैं, तो मुझे लगा कि शायद वे नाराज़ होंगे कि मैंने स्वेटर क्यों नहीं पहना है। इसलिए मैंने दिखावे के लिए स्वेटर पहन लिया। उन्हें मेरा दिखावा पसंद नहीं आया। और फिर महागुरु का मास्टर स्ट्रोक आया। एक ओर कहां तो मुझे बिना स्वेटर के सर्दी नहीं लग रहा थी और मैं बड़े आराम से घूम रहा था और कहां तो स्वेटर पहनने के बावजूद मुझे कंपकंपी छूटने लगी, मेरे दांत किटकिटाने लगे !

जब उन्होंने मुझे उस हाल में देखा तो बस इतना ही कहा, "क्या ज़रूरत थी?" और मेरा कांपना तुरन्त बंद हो गया। मैंने एक सबक़ सीखा। हालांकि मुझे पूरा यक़ीन नहीं है कि वह सबक़ क्या था। लेकिन इस घटना ने निश्चित रूप से कुछ ही सेकंड में मेरे स्पर्श के अहसास में हेरफेर करने की उनकी शक्ति का प्रदर्शन किया।

गुरुदेव की सुनने की क्षमता के बारे में श्री राजी शर्मा कुछ बता रहे हैं।

राजी जीः जहां तक संगीत की बात है, उन्हें कुछ धुनें बहुत पसंद थीं।

अपने शुरुआती सालों में, गुरुदेव भी आपकी और मेरी तरह ही अपनी इंद्रियों के बहकावे में आ जाते थे। लेकिन समय और अभ्यास के साथ उन्होंने उन पर क़ाबू पा लिया और बाद में यह उनके व्यवहार का अधिनियम बन गया।

गग्गू अपने मामा जी की यादों को ताज़ा कर रहे हैं।

सवालः गुरुदेव को कौन से गाने पसंद थे, चूंकि आप उनके साथ रहते थे तो आपको मालूम होगा?

गग्गू जीः वह सीटी बजाते थे। 'ज्वेल थीफ़' फिल्म का गाना *"रुलाके गया सपना मेरा, बैठी हूं कब हो सवेरा"* बजाते थे। उन दिनों माउथ ऑर्गन चलता था। उस पर *"सांवरे सलोने आए दिन बहार के"* बजाया करते थे।

सवालः क्या खूब। जैसा कि मैं देख रहा हूं, हो सकता है कि उन्हें छोटी उम्र में यह सब पसंद रहा हो, लेकिन बाद में सारे शौक़ खत्म हो गए?

गग्गू जीः शौक़ कभी न कभी मर ही जाते हैं। तो ऐसा ही कुछ गुरुदेव के साथ भी हुआ।

सवालः सही कह रहे हैं। उनके संगीत के शौक़ के बारे में कुछ और बताएं। वह कौन से गाने गाते थे?

गग्गू जीः जब वह अकेले होते तो गाने गाया करते थे और बिनाका गीत माला जैसे कार्यक्रम भी सुनते थे। हमने उन्हें हमारे बचपन के दिनों में गाते हुए सुना है। वह शादीपुर के पूसा में काम करते थे और साइकिल से ऑफ़िस जाते थे। सीटी बजाते, साइकिल की घंटी बजाते और *"रुलाके गया सपना मेरा, बैठी हूं कब हो सवेरा"* गाना गुनगुनाते हुए जाते थे।

गग्गू के मामा जी को संगीत का शौक़ था और वह ब्लैक ऐंड व्हाइट दौर की फ़िल्मों के गीतों के शौक़ीन थे। मामा जी जब गुरुजी बने तो उनका जोश और शौक़ कम होने लगा। जब गुरुजी महागुरु बने, तो सुनने की यह अनुभूति शौक़ के बजाय एक साधन बन गई। इसे प्रगति कहें या पीछे हटना, इस अनुभूति पर क़ाबू पाना उच्चतम सिद्धि प्राप्त करने की योग्यता है। यदि आप उच्च लोकों में स्थान पाना चाहते हैं, तो आपको अपनी इन्द्रियों पर लगाम लगानी होगी।

गुरुदेव ने इसे कोशिश और संकल्प के साथ किया। हम भी कर सकते हैं। हम बहुत से लोगों से प्रेरणा ले सकते हैं।

ऐसा ही एक बड़ा उदाहरण गुरुदेव थे।

कोई इतना अमीर नहीं होता
के अपना गुज़रा कल खरीद सके,
कोई इतना अमीर नहीं होता
के अपना गुज़रा कल खरीद सके,
और कोई इतना ग़रीब भी नहीं होता
कि अपना आने वाला कल न बदल सके।